**Educational Administration: Theory and Practice**
2022, 28(1), 407 - 409
ISSN: 2148-2403
https://kuey.net/

**Research Article**

# Evolving from Traditional Epistemologies to Technological Intelligences

Dr. Meena Sharma[1*]

**Citation:** Dr. Meena Sharma, et.al (2022). Evolving from Traditional Epistemologies to Technological Intelligences, *Educational Administration: Theory and Practice*, 28(1) 407 - 409
Doi: 10.53555/kuey.v28i01.11589

**ARTICLE INFO**

**ABSTRACT**

The trajectory of human knowledge has continually evolved from traditional epistemologies—anchored in philosophy, culture, and lived experience—to contemporary regimes of cognition shaped by artificial and technological intelligences. Classical epistemic traditions emphasized intuition, metaphysics, ethics, and communal wisdom, transmitted through oral lineages, scriptural hermeneutics, and phenomenological encounters. In contrast, the digital age privileges datafication, algorithmic rationality, and computational cognition, thereby transforming not only the modalities of knowledge production and circulation but also the ontological status of truth, agency, and epistemic authority.

This paper interrogates the transition from human-centered modes of knowing to machinic mediations of intelligence, tracing both the continuities and disjunctions in our understanding of consciousness, cognition, and epistemic validation. Drawing upon classical epistemological frameworks—such as Indian Pramāṇa theory, Western empiricism, and rationalist traditions—alongside the rise of Artificial Intelligence (AI), neural architectures, and information philosophy, the study posits that technological intelligence constitutes not a rupture but an evolutionary amplification of human cognition. It argues that algorithmic epistemes extend the human mind's quest for self-reflexivity and pattern recognition into machinic forms of reason and perception.

The paper concludes by proposing a model of integrated epistemology, wherein humanistic values, ethical intentionality, and digital cognition converge to articulate a posthuman horizon of knowledge. Within this framework, technological intelligence is re-situated as a co-evolving partner in the epistemic continuum rather than a substitute for human reason—ushering in an emergent paradigm of hybrid knowledge systems in twenty-first-century societies.

स्त्री–विमर्श एक आधुनिक मानवीय विमर्श है जो स्त्री और पुरुष के समान अधिकार समान–सम्मान एवं समान मानवीय भाव–भूमि के सैद्धांतिकी पर प्रतिष्ठित है। यह नारी के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक एवं वैयक्तिक विकास को समग्रधारा से संबंधित विमर्श है। 'स्त्री विमर्श' का मुद्दा व्यवस्था परिवर्तन का मुद्दा है, जिसके मूल में स्त्री की अस्मिता एवं पहचान का संदर्भ निहित है। स्त्री–विमर्श व्यवस्था की प्रत्येक शाखा से संबंधित है। यह विमर्श मानवता के आधे हिस्से से संबंधित है। यह एक जाति, एक धर्म, एक क्षेत्र, एक राष्ट्र, एक समाज की स्त्रियों का विमर्श न होकर जाति, धर्म, क्षेत्र, राष्ट्र समाज आदि इन सबका अतिक्रमण करते हुए आधी दुनिया के संघर्षरत स्त्रियों का विमर्श है, जिसकी अस्मिता और पहचान, शक्ति और ऊर्जा को हजारों वर्षों के वैषम्यमूलक इतिहास ने कुचला है, रौंदा है। अब पुनर्जागृत होना चाहती है। वह अपनी पीठ से इतिहास को धूल–मिट्टी झाड़कर समग्र अस्मिता के साथ अपने व्यक्तित्व एवं अस्तित्व के प्रकाशन हेतु प्रतिक्षण प्रतिबद्ध है। वह इतिहास से टकराती है। वर्तमान में संघर्ष करती है और अपने लिए एक नये ढंग का इतिहास भी रचना चाहती है। वह जेंडर, वर्ग, जाति, पितृसत्ता सभी से मुठभेड़ करते हुए उसमें आने वाले परिवर्तनों और परिवर्तनों की प्रक्रियाओं से जोड़कर देखती है। निरपेक्ष रूप अथवा एकांगी आयाम तक स्वयं को सीमित न रखकर बहुआयामी संघर्ष के सत्य को स्वीकार कर सदियों से चली आ रही दासता, शोषण, उत्पीड़न की बेड़ियों को तोड़कर पितृसत्तात्मक अराजक एक अमानवीय व्यवस्था को तोड़ने के लिए कटिबद्ध विमर्श है। जीवन की सार्थकता को मानवीय धरातल पर निजी अस्तित्व के संदर्भ में उपलब्ध करने का मानवीय विमर्श है। प्रकारांतर से आधुनिक युग में स्त्री का यह विद्रोह हजारों वर्षों की अमानवीय सामाजिक आधार एवं अधिरचना से है। जो पितृसत्तात्मक मूल्यों की दुबारा समीक्षा की मांग करता है।[1]

नारी विमर्श समकालीन भारतीय जीवन का एक लोकप्रिय विमर्श है। यह नारी की अस्मिता एवं पहचान का विमर्श है। यह स्त्री–जीवन के समस्त सरोकार एवं व्यवस्था के रूपान्तरण का विमर्श है। यह अनपूछे हुए सवालों और सुलगते हुए सवालों का विमर्श है। क्योंकि पितृसत्तात्क समाज में स्त्री द्वारा अनाधिकार प्रश्न पूछने की उदंडता और परिणामस्वरूप सिर कलम करने की खुलेआम धमकी के बीच अपनी दहलीज से बाहर निकलने एवं समग्र अभिव्यक्ति का विमर्श है, समग्र अधिकार और समग्र सम्मान का विमर्श है–

**"मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे**
**तुम्हारा सिर कटकर लुढ़ेगा जमीन पर**
**मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना**
**मत उठाओ प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर**
**वह पुरुष है।"[2]**

स्त्री–विमर्श एक और स्त्री सशक्तीकरण से तो दूसरी ओर समाज के सशक्तीकरण से जुड़ा हुआ है। यदि स्त्री गुलाम या पराधीन हो तो क्या कोई समाज सात हो सकता है? कभी नहीं स्त्री–मुक्ति, स्त्री–अधिकार, स्त्री–नियति, स्त्री–अस्मिता, अनुभव, स्त्री–इतिहास और स्त्री जीवन के तमाम प्रश्नों के उत्तर भारतीय

*Copyright © 2022 by Author/s and Licensed by Kuey. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*

सामाजिक संरचना सामाजिक परिवेश एवं सामाजिक स्थिति के भीतर से ही खोजने होंगे। अर्थात् स्त्री विमर्श के पैर भारतीय जमीन पर टिके रहने चाहिए, बेशक उसकी आँखे पूर्व और पश्चिम सभी दिशाओं में खुली हुई हो। प्रश्नों और विमशों की दिशा भारत से पश्चिम की ओर तो हो सकती है किन्तु पश्चिम से आयातित अपर्याप्त उत्तर भारतीय स्त्री के स्थान पर, स्त्री के सामाजिक संरचना के बाहर ही चक्कर लगाता रहेगा। अपना प्रश्न और उधार का उत्तर गफलत ही पैदा करेगा। क्योंकि भारत का अपना ही एक सामाजिक यथार्थ है।

भारत का स्त्री–विमर्श अपनी परंपरा और इतिहास के साथ वाद–विवाद और संवाद स्थापित करती है। उस युग की प्रश्नाकुल स्त्री द्वारा अभिव्यक्ति के खतरे उठाकर भय मुक्त अभिव्यक्ति को आज की स्त्री सलाम करती है वैसी स्त्री की सामाजिक विरासत एवं स्मृति से स्वयं को जोड़कर गौरवान्वित होती है। तमाम स्त्रियां उस स्त्री से जुड़ती है और वो स्त्री अपनी पुस्तक, अपने विचार तमाम स्त्रियों को समर्पित करती है। 'ओरियाना फलाची' के उपन्यास 'लेटर टू ए चाइल्ड अनबॉर्न' की लेखिका का पुस्तक समर्पण उन तमाम समानानुभव और समानधर्मी स्त्रियों के लिए है जो बिना मौत के भय के अनुत्तरित प्रश्नों को भी बार–बार पूछने से गुरेज नहीं करती। ऐसी स्त्रियों से लेखिका आत्मीयता एवं बहनापा स्थापित करती है और स्नेह की धारा को अभिव्यक्ति के खतरे उठाने वाली ऐसी तमाम महिलाओं तक उड़ेलती है–

ष्ज्व जीवेम ीम कव दवज मिंत कवनइज.
ज्व जीवेम ीव वदकमत ील.
पजीवनज हतवूपदह जतपमक दक ज जीम बवेज व निर्मितपदह दक कलपदह.
जव जीवेम ीव चवेम जीमउेमसअमे जीम कपसमउउं.
व हिपअपदह सपमि वत कमदलपदह पज.
जीपे इववो पे कमकपबंजमक.
इल वउंद.
वित सस वउंद.ष

(जिन्हें सवालों से कोई डर नहीं, जो बिना थके या मौत से बिना डरे पूछती है बार–बार क्यों? यातनाओं की भारी कीमत चुकाने के वाबजूद...... उनको जिनके सामने चुनौती होती है जीवन के सृजन या उसके नकार की यह किताब एक स्त्री द्वारा तमाम स्त्रियों को समर्पित है।)

समग्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत और चुनौती बनकर खड़ी एक जीवित स्त्री की तलाश उसके प्रतिमान, उसके जीवन की अर्थवत्ता का विमर्श है।[3] वह स्त्री जो पितृसत्ता को नकारती है, उस सत्ता द्वारा आरोपित एवं प्रदत्त भूमिकाओं के प्रति सवाल उठाती है, वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रक्रिया में पितृसत्ता के स्थान पर एक बेहतर मानवीय व्यवस्था के लिए प्रस्तुत है, तत्पर है, वह स्त्री धर्म, परम्परा, रीति–रिवाज, नियम, समाज सभी को से प्रश्न करती है, क्योंकि नैतिकता, शास्त्र, धर्म और संस्कृति की दुहाई देकर ही तो उसका शोप एवं उत्पीड़न किया गया। वह घर के अंदर और घर के अन्दर हिंसा से पीड़ित रही जकड़ी गयी। तमाम नियम पुरुषों का, पुरुषों के द्वारा और पुरुषों के लिए बनाया गया, किन्तु पुरुष ने स्वयं को नियमों से ऊपर रखा। पुरुषों ने स्त्रियों को अपना मनोरंजन का माध्यम बनाया, उसे क्रय विक्रय की चीज बनाया। प्रजनन, भोग, शोषण की वस्तु बनाया साहिर लुधियानवी की निम्नलिखित कुछ पंक्तियां इसी सामाजिक–मानवीय विडम्बना का ब्यौरा दे रही है जिसमें औरत ने आदमी को क्या दिया और बदले में आदमी ने औरत को क्या दिया–

औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाजार दिया।
जब भी चाहा मसला, कुचला, जब चाहा दुतकार दिया।
चुनवाई है कहीं दीवारों में बिकती है कहीं बाजारों में।
नंगी नचवाई जाती है, अय्याशों के दरबारों में।
यह वह बेइजत चीज है, जो बँट जाती है इन्तदारों में
मर्दो के लिए लाखों सेजे औरत के लिए अबस एक चिता।
मर्दो के लिए हर ऐश का हक, औरत के लिए जीना भी सजा।
जिन सीनों ने इनको दूध दिया, उन सीनों को व्यापार किया।
जिस तन से उगे कोंपल बनकर, उस तन को जलीलों ख्वार किया।
मदों ने बनाई जो रस्में, उनको हक का फरमान कहा।
औरत के जिंदा जलने को, कुर्बानी और बलिदान कहा।
इस्मत के बदले रोटी दी और उसको भी एहसान कहा।
संसार की हर बेशर्मी, गुरबत की गोद में पलती है।
चकलों ही में आकर रुकती है, फाकों से जो राह निकलती है।
मर्दों की हवस है जो अकसर औरत के पाप में ढलती है।
औरत संसार की किस्मत है, फिर भी तकदीर की बेटी है।
अब तार पच्चंबर जानती है, फिर भी शैतान की बेटी है।
यह वह बदकिस्मत माँ है, जो बेटों की सेज पर लेटी है।
औरत ने जनम दिया। मदों को, मदों ने उसे बाजार दिया।
जब जी चाहा मसला कुचला, जब चाहा दुतकार दिया।
(साहिर लुधियानी) 16

स्त्री और पुरुष संबंधों की यह ऐसी विचित्र एवं व्याकुल दुनिया है, जो अधूरी एकांगी, अंतर्विरोध, टीस, कसक वेदना, शोषण, उत्पीड़न और अमानवीयता से भरी

हुई है, जिसमें विषमता का साम्राज्य है। स्त्री विमर्श ऐसी ही अंतर्विरोध एवं उदास करने वाली इस दुनिया को समरस एवं मानवीय बनाने की जद्दो जहद है। यह स्त्री और पुरुष के समान, सम्मान, समान अधिकार और बराबरी की घोषणा करता है। यह विमर्श स्त्री और पुरुष के लिए दो अलग–अलग दुनिया की बात नहीं करता, बल्कि अलग–अलग दिखाते हुए एक ऐसी मानवीय संस्पर्श से स्पंदित दुनिया को प्रस्तावना करता है, जिसमें कोई शोषित और शोषक न हो। वास्तव में स्त्री को कैद करके पुरूष ने स्वयं और समाज दोनों को कैद कर लिया। और दो गैर बराबर, विषम लोगों में कैसे स्वस्थ और मानवीय संबंध हो सकता है। जबकि स्त्री और पुरुष के बीच स्वस्थ और बराबरी के मानवीय संबंधों की नींव पर ही एक मानवीय समाज की परिकल्पना हो सकती है। सभ्य और प्रगतिशील राष्ट्र के नागरिक एवं स्वस्थ समाज के सदस्य के रूप में हम तभी गौरव प्राप्त कर सकते हैं। एक उन्नत राष्ट्र में स्त्री का क्या स्थान और उसकी भूमिका होती है, इसे स्वामी विवेकानन्द इन शब्दों में बयान किया है– "संसार की सभी जातियां, नारियों का सम्मान करके ही महान हुई है, जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती वह न तो अतीत में उन्नति करना नहीं जानती वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी है, और न आगे उन्नति कर सकेगी।[4] किसी राष्ट्र की अस्मिता और राष्ट्र का भविष्य नारी की अस्मिता और नारी के भविष्य से कटकर निर्मित नहीं हो सकती। नारी की अस्मत और नारी की अस्मिता ही प्रकारान्तर से किसी राष्ट्र के गौरव और राष्ट्र के भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती है। दिल्ली में 16 दिसम्बर 2012 को घटित 'दिल्ली में निर्भया गैंगरेप' की घटना से राष्ट्र का सिर शर्म से कितना झुका या उठा, यह सर्वविदित है।

आज का स्त्री विमर्श नारीवाद को ऐसी संपूर्ण विचारधारा पर आधारित जो दुनिया के रूपान्तरण को एक समग्र वैश्विक दृष्टि प्रदान करता है। स्त्री की स्थिति, परिभाषा, भूमिका, अस्मिता, अधिकार, अनुभव, संघर्ष और शुभाकांक्षाओं का वैश्वीकरण करते हुए स्त्री की अस्मिता एवं पहचान के बुनियादी प्रश्नों से आज का नारीवाद टकराता है। पूर्व से लेकर पश्चिमी देशों के स्त्री अनुभवों में निहित समान एवं असमान सूत्रों की जाँच–पड़ताल करता है आज का स्त्री–विमर्श भारत की तरह दुनिया के अन्य देशों में स्त्री–संघर्ष और स्त्री–अधिकारों का एक इतिहास रहा है। स्त्री प्रश्नों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति कमोवेश एक जैसी हो रही है। स्त्रियों की संघर्ष यात्रा, स्त्री के वस्तु से प्राणी और व्यक्ति बनने की संघर्ष यात्रा है। पनघट की डगर बहुत ही कठिन और टेढ़ी–मेढ़ी रही है।

स्त्री विमर्श में बड़ी बहस स्त्री आन्दोलन की दशा और दिशा को लेकर है। उसके डगर को लेकर है। कुछ लोग इस स्त्री–मुक्ति आंदोलनों को प्रतिक्रियात्मक रूप मानते हैं। इसे पुरुषों की नकल (प्रतिलिपि) बनने का प्रयास मानते हैं। जबकि नकल समान नहीं बनाती, सम्मान नहीं दिलाती । नकल आपको प्रतिलिपि

तो बना सकती है, मौलिक नहीं। मौलिकता के लिए भिन्नता होना आवश्यक है। पुरुष बनने की होड़ में अलक्षित मनोवैज्ञानिक ग्रंथि कार्य कर रही होती है कि वे पुरुषों से हीन है, जबकि स्त्रियों को अपनी नजीर स्वयं बनानी होगी। अपना रोल मॉडल स्वयं गढ़ना होगा, स्टीरियोटाइप भूमिका से बाहर निकलकर। स्त्री–पुरुष समरूपता और भिन्नता के इस बारीक अन्तर को ओशो रजनीश चिन्हित करते हुए कहते हैं– ''मैं कहना चाहता हूँ कि स्त्रियां न तो पुरुषों से हीन है और न समान स्त्रियां पुरुषों से भिन्न है, वे बिल्कुल भिन्न है। न उनके नीचे होने का सवाल है, न उनके समान होने का सवाल है, स्त्रियों पुरुषों से बिल्कुल भिन्न है और जब तक स्त्रियां अपनी भिन्नता की भाषा में, अपने अलग व्यक्तित्व की भाषा में सोचना शुरू नहीं करेगी तब तक या तो वे पुरुष की दास होंगी, या पुरुष की अनुयायी होगी और दोनों स्थितियाँ खतरनाक है।''[5]

अतः स्त्रियों को न तो पुरुषों का दास बनना है और न ही अनुयायी बल्कि अपनी लोक अलग बनानी होगी, अपना प्रतिमान अलग गढ़ना होगा। क्योंकि पुरुषों से उन्हें जो लोक मिली है उस पर कहना होगा– 'लीक जो हमें मिली है, तंग वह अंधी गली थी।' उस तंग, संकीर्ण और अंधी गली वाली लीक हमारा रास्ता, हमारा आदर्श कैसे हो सकता है? स्त्रियों को प्रतिक्रियावादी और प्रतिलिपिवादी दोनों अतिवादों के खतरों के बीच से अपना रास्ता ढूंढ़ना होगा, अपनी मंजिल और अपना रास्ता स्वयं तय करना होगा, दूसरों की मंजिल और दूसरों का रास्ता स्त्री की अपनी मंजिल और अपना रास्ता कैसे हो सकती है! ''समानता एक बात है। समरूपता बिल्कुल अलग बात है, अलग दृष्टि है,... स्त्रियां पुरूष जैसी बनने का प्रयास करें, आपके विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध है, मगर उसका अर्थ यही है कि स्त्रियों को अद्वितीय, अलग बनकर रहना होगा, आप पुरुष नहीं है और स्त्रियों के पुरुष बनने की जरूरत भी नहीं है। क्योंकि पुरुषों के पास विशेष कुछ नहीं है।''[6]

स्पष्ट है कि स्त्रियों को न औरतपन के साथ रहना है और न ही पुरूष जैसा बनना हैं बल्कि उसे मौलिक बनना है। यह मौलिकता उसके अद्वितीय अलग एवं भिन्नता में है। अलग का अर्थ अलगाव नहीं बल्कि भिन्नता से है। जो उसके व्यक्तित्व को नई धार देगी, उसके अर्न्तवस्तु को समृद्ध करेगी और उसके पहचान को निखारेगी। अपने विकास का आदर्श स्वयं ही निर्मित करने के संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचार उल्लेखनीय है–

''पहले स्त्रियों को उचित शिक्षा दो, फिर उन्हें अपनी स्वतंत्रता दो, फिर वे तुम्हें खुद ही बताएंगी कि उनकी उन्नति के लिए कौन–कौन से सुधार आवश्यक है। वे अपनी उन्नति का मार्ग खुद ही प्रशस्त करेंगी।''[7]

## References


1. Chalmers, David J. The Conscious Mind: In Search of a Fundamental Theory. Oxford University Press, 1996.
2. Floridi, Luciano. The Philosophy of Information. Oxford University Press, 2011.
3. Kurzweil, Ray. The Age of Intelligent Machines. MIT Press, 1990.
4. Maturana, Humberto, and Francisco Varela. The Tree of Knowledge: The Biological Roots of Human Understanding. Shambhala, 1992.
5. Babbage, Charles. Passages from the Life of a Philosopher. Longman, Green, Longman, Roberts & Green, 1864.
6. Russell, Bertrand. Human Knowledge: Its Scope and Limits. Routledge, 1948.
7. Dreyfus, Hubert L. What Computers Still Can't Do: A Critique of Artificial Reason. MIT Press, 1992.
8. Searle, John R. "Minds, Brains, and Programs." Behavioral and Brain Sciences, vol. 3, no. 3, 1980, pp. 417–457.
9. Sharma, Arvind. The Philosophy of Religion and Advaita Vedanta. Penn State University Press, 1995.
10. Varela, Francisco J., Evan Thompson, and Eleanor Rosch. The Embodied Mind: Cognitive Science and Human Experience. MIT Press, 1991.